इकाई 6 ‘आज का रैदास’ और ‘द्रोणाचार्य सुनें : उनकी परंपराएँ सुनें’ fonkg dh ijijk dk l'tukRed fodkl

bdkbZ dh :ijs[kk

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 दलित कविता के विकास की ऐतिहासिक पृ-ठभूमि : प्रारंभिक दौर
- 6.2.1 मध्यवर्ती दौर
- 6.2.2 उत्तरवर्ती दौर या आधुनिक काल
- 6.2.3 समकालीन दलित कविता

6.3 संकलित दलित कवियों का व्यक्तित्व एवं कृतित्व
- 6.3.1 जयप्रकाश कर्दम
- 6.3.2 दयानंद बटोही

6.4 'आज का रैदास* : विद्रोही चेतना की कविता
- 6.4.1 'आज का रैदास* : मूल प्रतिपाद्य
- 6.4.2 काव्यगत संवेदना
- 6.4.3 आज का रैदास : भवि-य दृ-िट का प्रश्न

6.5 'द्रोणाचार्य सुनें : उनकी परंपराएँ सुनें* : दलित अतीत की छानबीन
- 6.5.1 कविता के परिप्रेक्ष्य में : इतिहासबोध और दलित चेतना
- 6.5.2 दासता का अनुभव उसके अंत की घो-णा है
- 6.5.3 'द्रोणाचार्य सुनें : उनकी परंपराएँ सुनें* : वर्णवादी परंपरा में दलित दखल

6.6 दलित कविता के विश्ले-ण/साहित्यिक मूल्यांकन का प्रश्न पारंपरिक प्रतिमान
- 6.6.1 दलित सौन्दर्यशास्त्र

6.7 सारांश

प्रश्न / अभ्यास

6.0 उद्देश्य

यह इकाई हिन्दी दलित साहित्य का विकास पाठयक्रम के हिन्दी दलित कविता खंड–1 की इकाई छह 'आज का रैदास* और 'द्रोणाचार्य सुनें : उनकी परंपराएँ सुनें* पर आधारित है। इस पाठ के माध्यम से आप मानवतावादी दलित कविता के उस पक्ष से रू-ब-रू होंगे, जो एक तरफ़ वर्णवादी रूढ़ियों पर प्रहार करती है तो दूसरी तरफ़ समतावादी, श्रम आधारित मानवीय सौन्दर्यशास्त्र के पक्ष में अपनी आवाज़ बुलंद करती है। भारतीय समाज में प्रायः दो समाज एक साथ सक्रिय रहे। एक वह जो वर्णवाद, मोक्ष, आत्मा-परमात्मा की कुहेलिका में सौन्दर्य मानकों को गढ़ता रहा, दूसरा वह जो श्रम आधारित सौन्दर्यशास्त्र और वर्णवादी दंभ के प्रखर विरोध में मानवीय समाज के निर्माण के लिए संघर्-रत रहा। दलित साहित्य का रिश्ता इस दूसरे समाज से है।

भारतीय समाज में दलित साहित्य का संबंध दलित मुक्ति से है। ब्राह्मण-ग्रन्थों ने अलगाव का जो दर्शन दिया, वह भारतीय समाज की स्वाधीन चेतना व वृहत समाज के विकास में निर्मम अवरोध बना। जातीय भेदभाव, असमानता का दर्शन उस समय सर्वाधिक निकृ-ट रूप में प्रकट हुआ, जब छुआछूत, उत्पीड़न और बहि-कार की घटनाएँ भारतीय समाज का स्वभाव बन गयीं। वेदों के रचयिताओं ने जब कर्मकाण्डों को संस्थाबद्ध रूप देना आरंभ

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

किया, उसी समय बहुमत ने इनसे असहमति के स्वर को भी बुलंद किया। बृहस्पति के सूत्र और चार्वाक मत ऐसे ही स्वर हैं। यह दर्शन ^जन्मना श्रे-ठ* के किसी भी दावे को खारिज करता है। जाहिर सी बात है, सुविधाभोगी, श्रम विरोधी अवधारणाओं ने ऐसी किसी मान्यता को नास्तिक कहकर उनके प्रतिकार की मुहिम चलायी।

दलित चिंतन की बहुत पुरानी परंपरा रही है। यह परंपरा चार्वाकों, बौद्धों, मध्यकालीन संतों, ज्योतिबा फुले, डॉ. भीमराव आंबेडकर की मानवतावादी सोच से प्रेरित कविताओं समेत, आधुनिक साहित्य के केन्द्रीय विमर्श में रूपांतरित होकर जीवंत और ऊर्जावान संदर्भों से जुड़ी हुई है। वस्तुतः यह परंपरा हममें ऐसे सौन्दर्यशास्त्र के प्रति समझदारी भरती है, जिसमें अमानवीय जातिवादी रूढ़ियों से मुक्ति व यथार्थ जगत से सघन रिश्ता कायम करने की ज़रूरत व छुआछूत-उत्पीड़न जैसी त्रासदियों से संघर्ा की आवश्यकता महसूस होती है।

आधुनिक दलित कविता के दो महत्वपूर्ण रचनाकारों दयानन्द बटोही और जयप्रकाश कर्दम की दो प्रमुख रचनाओं, क्रमशः ^द्रोणाचार्य सुनें : उनकी परंपराएँ सुनें* व ^आज का रैदास* के माध्यम से आप दलित सौन्दर्य शास्त्र और चेतना के एक पक्ष से रू-ब-रू होंगे। इस इकाई के अध्ययन से आप परिचित होंगे-

- वर्णवाद और जाति आधारित दर्शन के प्रतिरोध में निर्मित होने वाले दलित सौन्दर्यशास्त्र से;
- विद्रोही चेतना में उपस्थित भवि-य दृ-टि से;
- पारंपरिक इतिहासबोध पर सवाल उठाती दलित चेतना की काव्यानुभूति से;
- लोकमत की उस काव्यचेतना से जो वर्ण-जाति आधारित अत्याचार से मुक्ति के सवाल को बुनियादी सवाल मानती है;
- ^द्रोणाचार्य सुनें, उनकी परंपराएँ सुनें* कविता के माध्यम से दलित स्वर की वर्णवादी दुर्ग से असहमतियाँ और उनके प्रति विद्रोह में उठे हाथ से;
- ^द्रोणाचार्य सुनें, उनकी परंपराएँ सुनें* की काव्यानुभूति की बनावट से;
- ^आज का रैदास* कविता के माध्यम से उस अभाव-उत्पीड़न से बने पारंपरिक सौन्दर्यशास्त्र से रू-ब-रू हो सकेंगे जो क्रूर व निर्मम है तथा श्रमविरोधी और वर्ण आभिजात्य दंभ के श्रे-ठताबोध से ग्रसित भी।

श्रम व बहुजन विरोधी रूढ़ियों से असहमत वैकल्पिक सौन्दर्यशास्त्र की दुनिया से।

6.1 प्रस्तावना

ßदलित कविताÞ भद्र कविता के प्रतिपक्ष की अवधारणा है। वर्ण व्यवस्था से पीड़ित दलित जनता की अमानवीय त्रासदियों और उनसे मुक्ति के आह्वान का प्रखर रूप दलित कविता का प्रतिपाद्य है। इस काव्यधारा में ^रूप सौन्दर्य* की अपेक्षा ^कर्म सौन्दर्य* पर बल है। इसके पीछे वह दृ-टि सक्रिय है, जो भूख, उपेक्षा, अभाव, उत्पीड़न, बहि-कार के निर्मम और खौफ़नाक पहलू से बावस्ता है। दूसरी तरफ भद्र कविता में यथार्थ की अपेक्षा ^सौंदर्य तत्त्व* या वस्तु की अपेक्षा ^रूप* पर इसलिए अधिक बल है कि वह पेट भरे संपन्नों की उच्चवर्णी मानसिकता से संचालित है। इस प्रकार भद्र और दलित कविताओं की रचना साथ-साथ हुई, उनका विकास भी साथ-साथ हुआ, पर दोनों के स्रोत अलग-अलग रहे। आलोचक कंवल भारती ने ^दलित निर्वाचित कविताएँ* की भूमिका में उल्लेख किया है कि, ßहिन्दी में दलित कविता की धारा लगभग तभी से मौजूद है, जब से भद्र कविता की धारा

चली। किन्तु दोनों की भाव-भूमियाँ अलग-अलग रहीं। दोनों धाराएँ समानान्तर चलीं, और दोनों का ही विकास हुआ। दलित कविता के केन्द्र में सदैव दलित जनता और शो-ण पर आधारित व्यवस्था रही। वह भूखे-नंगें, अछूत और पीड़ित जनता की कविता थी। इसलिए समाज और संसार से वह हमेशा जुड़ी रही। इसके विपरीत भद्र कविता मुख्यधारा के पेट भरे लोगों की कविता थी। उन्हें परलोक की चिन्ता थी, क्योंकि उनका लोक सुखद था। इसलिए भाव और कला के स्तर पर यह कविता कई प्रयोगों और वादों से गुजरी। इसके केन्द्र में संसार हमेशा उपेक्षित रहा और भावबोध पलायनवादी।Þ

दलित रचनाकारों का लक्ष्य स्प-ट था। यही कारण है कि किसी अमूर्त सत्ता, रहस्यवाद या ईश्वर और मोक्ष की अवधारणा से अलग दलित कविता में उत्पीड़न, परिवर्तन की आकांक्षा और भौतिक दुनिया की सच्चाइयों का स्वर ही सक्रिय है। परिवर्तन की गहरी आकांक्षा होने के कारण गुस्से का इजहार दलित कविता की केन्द्रीय चेतना है। कई बार कविता के इस तेवर से लोगों को एकरसता और पुनरावृत्ति का भान होता है। लेकिन यह निर्विवाद है कि यह कविता अभिरुचि के बने-बनाये साँचे या ढाँचे पर जबर्दस्त प्रहार करती है। वरि-ठ कवि केदारनाथ सिंह दलित कविता के इस तेवर का काफ़ी मौजूद विश्ले-ण करते हैं, ßयह पूरा लेखन एक तरह से विचलित और बेचैन करने वाला है, जो अभिरुचि के बने-बनाये ढाँचे को थोड़ा छिन्न-भिन्न करता है। यह छिन्न-भिन्न करने की कोशिश उसकी प्रकृति में निहित है। परिवर्तन की गहरी आकांक्षा के साथ जब भी कोई साहित्यिक आंदोलन उभरता है तो वह कुछ चीज़ों को बचाने की ख़ातिर, कुछ ठहरी हुई चीज़ों के भीतर थोड़ी तोड़-फोड़ भी करता है। दलित लेखन यही कर रहा है और कई बार लग सकता है कि खासे ग़ुस्से के साथ कर रहा है। ग़ुस्से के पीछे यदि कोई सही दिशा और ठोस धरातल हो तो फ़िर वह गुस्सा नये सर्जनात्मक भावबोध में बदल जाता है।Þ

दलित कविता यथार्थ से पलायन के बजाए यथार्थ से मुठभेड़ की कविता है। जिन दार्शनिक सिद्धान्तों की अमानवीयता पर भद्र कविता चुप है या अघोि-त-घोि-त रूप से समर्थन का रुख़ अख्तियार करती है, उन पर दलित कविता मर्मांतक प्रहार करती है। उदाहरण के लिए, दो प्रखर दलित कवियों की अभिव्यक्ति देखी जा सकती हैः-

निसिदिन मनुस्मृति ये हमको जला रही है,
ऊपर न उठने देती नीचे गिरा रही है।
हमको बिना मजूरी, बैलों के संग जोते,
गाली व मार उस पर हमको दिला रही है।
लेते बेगार, खाना तक पेट भर न देते,
बच्चे तड़पते भूखे, क्या जुल्म ढा रही है।
ऐ हिन्दू कौम सुन ले, तेरा भला न होगा,

हरिहर (अछूतानंद)

ßहमनी के इनरा के निगिचे न जाइले जाँ,
पांके में से भरि-भरि पिअतानी पानी।
पनहीं से पिटि-पिटि हाथ गोड़ तुरि देलें,
हमनी के एतनी काही के हलकानी?Þ

हीरा डोम

जाहिर है भद्र हिन्दी लोक की कविता वर्ण व्यवस्था और जन्मना श्रे-ठ के दावे से प्रायः मुठभेड़ नहीं करती, या करती भी है तो इस अंदाज में कि साँप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे। यानी वह आमूल-चूल बदलाव को नज़र अंदाज़ करती है। ध्यान देने की बात है कि यह काव्यधारा केवल प्रतिकार और विरोध तक सीमित नहीं है, बल्कि यह उस नये विमर्श की पीठिका भी तैयार करती है, जिसमें वैज्ञानिक और लोकतांत्रिक तरीके से दलित

अधिकार का प्रश्न सक्रिय है। डॉ. विमल थोरात के शब्दों में, दलित कविता वर्ण व्यवस्था को धिक्कारती है। उसे हिन्दू धर्मग्रंथों में लिखित परंपरावाद, चातुर्वर्ण्य जाति–व्यवस्था और अस्पृश्यता मान्य नहीं है। इन सबके विरुद्ध दलित साहित्य विद्रोह कर उठा है। इसकी शुरुआत बाबासाहेब आंबेडकर ने वर्णव्यवस्था को मान्यता देने वाली, तथा अस्पृश्यों को गुलामी में हमेशा के लिए जकड़कर रखनेवाली 'मनुस्मृति' के दहन द्वारा की थी। जिन धर्मग्रंथों के आधार पर चातुर्वर्ण्य व्यवस्था यहां पर मज़बूत की गई है। उन सभी हिन्दू धर्मग्रंथों का दलित कवि निषेध करते हैं। (मराठी दलित कविता और साठोत्तरी हिन्दी कविता में सामाजिक और राजनीतिक चेतना, पृष्ठ 106)

दलित कविता दरअसल शोनित-पीड़ित समाज के दर्द और उनकी समस्याओं के जनवादीकरण का अभियान है। इस अर्थ में उसका एक सिरा पूंजीवाद के विरोध से भी जुड़ता है। दलित कविता का इतिहास भौतिकवादी चिन्तकों-लोकायतों, बौद्धों सिद्धों-नाथों के दर्शन से पर्याप्त प्रेरणा ग्रहणकर, मध्यकालीन दलित-संतों से गुज़रता हुआ, 19वीं सदी के ज्योतिबा फुले व बीसवीं सदी के आंबेडकर के क्रान्तिकारी विचारों से गहरे स्तर पर प्रेरित है। आधुनिक अर्थों में दलित कविता की सबसे पहली उपस्थिति महारा-ट्र में ज्योतिबा फुले के नाटकों और पंवाड़ा काव्य में दिखती है। उनकी एक कालजयी कृति है- ^गुलामगिरी*, जिसकी रचना 1873 में हुई। 16 परिच्छेदों में विभाजित इस रचना के अंतिम परिच्छेद में उनकी एक उल्लेखनीय प्रस्तावना है, ßशूद्रों को ब्रह्मराक्षसों की गुलामी से मुक्ति प्राप्त करने के लिए ब्राह्मणों के उन सभी धर्मग्रन्थों का नि-ेध करना होगा, जिनमें हमारी गुलामी का समर्थन है।Þ उसी तरह 20वीं शताब्दी में केरल के मछुआरे कवि के.पी.करुप्पन 1913 में ^जाति कुंभी* नामक एक क्रान्तिकारी कविता में परिया (चांडाल) द्वारा ब्राह्मण की निंदा का चित्रण करते हैं। यह निंदा इसलिए की जाती है कि इसमें वर्ण आभिजात्य के दंभ से मुग्ध ब्राह्मण, चांडाल को रास्ते से हटने की बात कहते हुए दुत्कारता है। केरल के ही नारायण गुरु आंदोलन के रूप में ^दलित विमर्श* की मुहिम चलाते हैं, जिनके योग्य शि-य कुमारन आशान हैं, जो ^दुरावस्था* कविता में रूढ़ियों-रिवाजों में आमूल-चूल बदलाव को रेखांकित करते हैं। इन सभी विचार स्फुलिंगों का स्वाभाविक और समृद्ध प्रभाव दलित हिन्दी कविता पर पड़ा, जिसे आंबेडकर दर्शन ने ऊँचाई के मुकाम का स्पर्श कराया। ^साहित्यकारों का मैं आह्वान करता हूँ कि वे विभिन्न साहित्यिक विधाओं के द्वारा उदात्त जीवनमूल्य और सांस्कृतिक मूल्यों को रेखांकित करें। अपने लक्ष्य को मर्यादा में मत बांधों उसे और अधिक विशाल बनने दो। वाणी का विस्तार करो, अपनी लेखनी को केवल अपने प्रश्नों तक सीमित मत रखो। उसे तेजस्वी बनाओ जिससे गांवों में फैला अंधकार दूर हो सके। यह मत भूलो कि इस भारत देश में उपेक्षित दलितों का बहुत बड़ा विश्व है। अपनी रचनाओं के द्वारा उनकी वेदना को समझकर उनके जीवन को उज्जवल बनाने की कोशिश करो। यही मानवता की सच्चाई हैं।* महात्मा ज्योतिबा फुले के बाद 20वीं सदी में बाबासाहेब आंबेडकर ने दलित आंदोलन को नया तेवर प्रदान किया। उन्होंने दलितों के सवाल को रा-ट्रीय आंदोलन का सवाल बनाया। उन्होंने साफ़ तौर पर यह स्प-ट किया कि जाति और वर्गहीन समाज का निर्माण किये बिना स्वराज प्राप्ति निरर्थक है। इस दर्शन का जबर्दस्त प्रभाव समस्त भारतीय साहित्य के साथ हिन्दी पर भी पड़ा। हिन्दी की दलित कविता का विस्तार से अध्ययन अपेक्षित है।

6.2 दलित कविता के विकास की ऐतिहासिक पृ ठभूमि% ikjfHkd nkj

वर्णवादी आभिजात्य, यज्ञ, मोक्ष, पुनर्जन्म आदि के विरोध में उठे लोकमत के दर्शन की आरंभिक पीठिका ^लोकायत दर्शन* में प्रखरता से उपस्थित है। यानी जिसे हम दलित स्वर की न्यायसंगत, मानवीय व लोकतांत्रिक आकांक्षा कहते हैं उसकी पृ-ठभूमि काफ़ी पुरानी है। ^लोकायत* बार-बार वेद सम्मत वर्ण-व्यवस्था का खण्डन करते हुए ^तीनों वेद* पदबन्ध

का उल्लेख करते हैं, यानी यह दर्शन इतना पुराना है कि उस समय तक चौथे वेद की रचना नहीं हुई थी। दलित विमर्श का इस चिन्तन से गहरे संबंध की पुरज़ोर संभावना व्यक्त की जा सकती है। यह परंपरा कालांतर में बौद्ध मत और फिर सिद्ध व नाथ परंपरा में रूपांतरित होती मध्यकालीन संत परंपरा तक पहुँची। दलित साहित्य बौद्ध साहित्य से गहरे स्तर पर प्रभावित है। बौद्ध साहित्य में वर्णाश्रम और आनु-ठानिक कृत्यों की आड़ में जो दलित बहुजन पर वेद मतावलंबी सवर्णों द्वारा अत्याचार किये गये, उसके प्रति तीव्र असहमतियाँ आसानी से मिल जाती हैं। उदाहरण के लिए, बौद्ध धर्मकीर्ति /प्रमाणवार्तिक* के पहले अध्याय के चौंतीसवें श्लोक में कहते हैंः

ßवेद प्रमाण्यं कस्यचित् कर्तृवादः
स्नाने धर्मेच्छा जातिवादावलेपः।
संतापरम्भः पापहानाम चेति
ध्वस्त प्रज्ञानां पंच लिंगानि जाड्ये।Þ

अर्थात् वेद को प्रमाण मानना, किसी ईश्वर को कर्ता कहना, स्नान (गंगादि) से धर्म चाहना, जाति की बात का अभिमान करना, पाप न-ट करने के लिए उपवास आदि करना, ये पाँच अकलमारे हुओं की जड़ता के चिह्न हैं। इसी तरह वाल्मीकि के परवर्ती और कालिदास के पूर्ववर्ती कवि अश्वघो-ा /वज्रसूची* में वर्ण-व्यवस्था समर्थकों को कटघरे में खड़ा करते हैं, ßअगर ब्राह्मण की उत्पत्ति ब्रह्मा के मुँह से हुई है, तो प्रश्न होगा कि ब्राह्मणी की उत्पत्ति कहाँ से हुई है? निश्चय ही इसकी भी उत्पत्ति ब्रह्मा के मुख से ही हुई है। खेद है। तब तो वह आपकी बहन हुई। फिर इसके साथ स्त्री प्रसंग? यह तो लोकविरोधी आचरण होगा।Þ

लोकायतों, बौद्धों, सिद्धों, नाथों की एक समरसतावादी समीक्षा व उसके सौन्दर्यबोध की यह क्रान्तिकारी चिन्ता कबीर की कविता में मारक ढंग से अभिव्यक्त हुई। कबीर की कविता का गहरा प्रभाव तत्कालीन श्रमशील तबके पर पड़ा। उन्होंने न अपने को हिन्दू माना और न ही मुसलमान। अवतारवाद और वर्ण-व्यवस्था में यक़ीन रखने वालों से कबीर ने असुविधाजनक सवालों की झड़ी लगा दी-

ßदस अवतार निरंजनन कहिए
सो अपना न कोई।
ब्रह्मा वि-णु महेसर कहिए इन सिर लागी काई।
इनहिं भरोसे मत कोई रहयो, इनहूँ न मुक्ति पाई।।
न हम नरक लोक को जाते, न हम सुरग सिधारे हो।
ब्राह्मण गुरु जगत का, साधु का गुरु नाहीं।
अति पुनीत ऊँचे कुल कहिए सभा माहि अधिकाई।
इनसे दीक्षा सब कोई मांगे, हंसि आवै मोहि भाई।।
ब्राह्मण कीन्ह कौन के काजा।
ब्राह्मण ही कीनी सब चोरी।।Þ

अर्थात् दस अवतारों में अपना कोई नहीं। उन्होंने वर्ण-व्यवस्था से पीड़ित दलितों से कहा कि उनके भरोसे मत रहना। जब उन्हें ही मुक्ति नहीं मिली तो वे तुम्हें क्या मुक्त करेंगे? उन्होंने स्वर्ग-नरक दोनों से इन्कार किया। ब्राह्मण की तथाकथित प्रति-ठा पर प्रहार करते हुए कहा कि वह पूरे संसार का गुरु हो सकता है, पर साधु का गुरु नहीं हो सकता। जो उन्हें ऊँचे कुल का कहकर उनसे दीक्षा माँगते हैं, उन्हें देखकर हँसी आती है। ब्राह्मण ने आज तक किसी का भला नहीं किया। वह तो चोर है।

रैदास ने ब्राह्मणों के श्रे-ठता दंभ को खुले तौर पर चुनौती दी-

ßबाभन को मत पूजिए जो हो गुन से हीन।
पूजिए चरन चण्डाल के, जो गुन ज्ञान प्रवीन।।

ऐसी जनश्रुति है कि गोस्वामी तुलसीदास ने रैदास की इस स्थापना के विरोध में लिखा-

ßपूजिए बिप्र सील गुन हीना।
नाहीं सूद्र गुन ज्ञान प्रबीना।।**

ध्यान देने की बात है कि दलित संत यद्यपि आध्यात्मिक संदर्भों में मुखर थे तथापि उनकी निगाह ग़ैरबराबरी के सामाजिक-आर्थिक मोर्चे के उन पहलुओं की ओर भी थी, जिनसे आध्यात्मिक यात्रा पर सवर्णों का अधिकार स्थापित हो गया था। रैदास ने समरस समाज का सपना इस प्रकार देखा-

ßऐसा चाहो राज मैं, जहाँ मिलै सबन को अन्न।
छोट-बड़ो सब समबसै, रैदास रहे प्रसन्न।।Þ

दलित कविता की यह मुखरता प्रखर रूप में 15 वीं-16 वीं शताब्दी तक दिखाई पड़ती है। उसके बाद 17वीं 18वीं सदी में प्रचलित इतिहास लेखन में दलित विमर्श की चेतना नजर नहीं आती। संभव है मुख्यधारा के इतिहास लेखन ने इसकी नोटिस न ली हो। कबीर, रैदास जैसे संतों की उपेक्षा इसलिए संभव नहीं थी कि उनकी क्रान्तिकारिता ने उन्हें युगप्रवर्तक व्यक्तित्व में रूपान्तरित कर दिया था। वे इतिहास के पात्र नहीं थे, इतिहास के निर्माता थे। दलित-कविता की उठान फिर 19वीं शताब्दी में सक्रिय होती है।

6.2.1 मध्यवर्ती दौर

19वीं शताब्दी के दलित लेखन के केन्द्रीय व्यक्तित्व हैं - महात्मा ज्योतिबा फुले। उनके द्वारा रचित पंवाड़ा काव्य में वर्णव्यवस्था की अमानवीय और सवर्ण श्रे-ठता की धज्जियाँ उड़ायी गयी हैं। पंवाड़ा वीरगाथा के लिए प्रचलित मराठी संज्ञा है। उनकी प्रख्यात रचना ^गुलामगीरी* में जितने क्रान्तिकारी पैनेपन के साथ ब्राह्मणवाद पर प्रहार है, वह 19वीं सदी की किसी अन्य रचना में दुर्लभ है। ^गुलामगिरी* में कुल सोलह परिच्छेद हैं। अंतिम परिच्छेद में उनकी प्रस्तावना है – जिन धर्मग्रन्थों के कारण वर्णव्यवस्था और सवर्ण मानसिकता का दर्शन न प्रतिि-ठित होता है, उनके नि-ेध के बिना श्रमशील शूद्रों की गुलामी से मुक्ति संभव नहीं। वे एक अभंग में कहते हैंः-

ßमनु जलकर खाक हो गया जब अंग्रेज आया।
ज्ञानरूपी माँ ने हमको दूध पिलाया।।
अब तो तुम भी पीछे न रहो।
भाईयों, पूरी तरह जलाकर खाक कर दो मनुवाद।।
हम शिक्षा पाते ही पाएंगे वह सुख।
पढ़ लो मेरा लेख, जोति कहे।।Þ

उनका मानना है कि ब्राह्मण इस देश में बाहर से आए तथा उन्होंने यहाँ के मूल निवासियों को गुलाम बनाया। अपनी बात के समर्थन में उनका कहना है कि शूद्रों के साथ जो अमानवीय व्यवहार ब्राह्मण प्रकट करते हैं, उससे यह साफ़ तौर पर लक्षित होता है कि ब्राह्मणों का इस देश से कोई दिली रिश्ता नहीं है। उन्होंने श्रमशील शूद्र स्त्री और ब्राह्मणी का फर्क बताते हुआ लिखा,

ßसिर पर पानी को ढोती।
झाड़न डालती।
गोबर में।।

काछ लगाकर गोबर रौंदती
गोहरा बनाती। धूप में।।
सुस्त बैठकर ब्राह्मणी की तरह
न मौज करती। छॉव में।।
ऐसी मेहनती नारी को कहते कुलंबिन।
ब्राह्मणों को धनपन।
जोति कहे।।

ßयह कहा जा सकता है कि आधुनिक दलित साहित्य में नवजागरण का जो क्रान्तिकारी तेवर उपस्थित है, उसके प्रस्थान बिन्दु के रूप में ज्योतिबा फुले का काव्यलोक है।Þ दलित साहित्य के सुपरिचित आलोचक कंवल भारती की टिप्पणी ग़ौरतलब है, ßज्योतिबा फुले की कविताओं में दलित विमर्श संपूर्ण शूद्र-अतिशूद्र वर्ग के लिए नवजागरण का विमर्श है।Þ

6.2.2 उत्तरवर्ती दौर या आधुनिक काल

केरल के सम्मानित अछूत कवि के.पी. करुप्पन ने 1913 में /जाति कुंभी* नामक लंबी कविता में शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन का नया भा-य किया। अपनी कविता में परिया अर्थात् चांडाल उस ब्राह्मण को कटघरे में खड़ा करता है जो उससे रास्ते से हट जाने के लिए कहता है:-

ßयह जो पूरी दुनिया तुम देख रहे हो
इसमें सब ईश्वर की संतान हैं और सबकी एक ही जाति है।
अपने जैसों को कोई परे हटा सकता है?
क्या ईश्वर इसे नहीं देख रहा है?
क्या अस्पृश्यता परले दर्जे की धृ-टता नहीं है?
इस पर ज़रा ध्यान से विचार करें।
यह कहना कि शरीर शरीर को अपवित्र कर देगा
यह घोर अज्ञान है
यह विचित्र है, निपट विचित्र।Þ

जैसे मराठी साहित्य की दलित साहित्य धारा के केन्द्रीय कवि ज्योतिबा फुले हैं, वैसे ही नारायण गुरु मलयालम की दलित चेतना के प्रस्थान बिन्दु हैं। नारायण गुरु ने जाति मत पूछो, जाति मत बताओ और जाति के बारे में मत सोचो का लोकप्रिय नारा दिया था। उन्होंने जाति प्रथा पर जो काव्यात्मक प्रहार किए वह अपनी मारकता में अपूर्व था। उनके शि-य कुमारन आशान ने /चांडाल भिक्षुकी* और /दुरावस्था* जैसी कविताओं में जाति प्रथा पर प्रहार किया। वे /दुरावस्था* कविता में ओजस्वी स्वर में साफगोई के साथ कहते हैं:

ßपूज्य ब्राह्मणों, मैं यह कहने का साहस करूँ
यदि आप इसे अनुचित समझें तो भी
देश और उसकी नि-ठा का ख़याल करके
लोगों और आप जैसे पुण्यात्माओं का
वक्त बदल गया है
और परंपरागत रीति-रिवाजों के बंधन भी
पुराने और जर्जर हो गए हैं

जाग्रत लोग इन कमजोर धागों से
बंधे नहीं रहेंगे
साहस के साथ आगे आएँ
अपनी रूढ़ियों और रिवाजों को बदलें,
वरना वे निश्चय ही आपको स्थानच्युत कर देंगे।Þ

हिन्दी की दलित चेतना में आंबेडकर के दर्शन के आगमन के पहले दो प्रमुख रचनाकारों की रचनाएँ युगान्तकारी आग़ाज़ के साथ आती हैं – हीरा डोम व स्वामी अछूतानंद हरिहर। हीरा डोम की एक ही कविता उपलब्ध है, जो 1914 में ^सरस्वती* पत्रिका में छपी थी- ^अछूत की शिकायत* शी-र्क से। इस कविता में एक अछूत की हृदय विदारक पीड़ा जिस मार्मिकता से अभिव्यक्त हुई है, वह अपनी संवेदना में अद्भुत है। कविता में एक अछूत भगवान से फरियाद करता है। यह फरियाद इतनी मर्मस्पर्शी है कि कटघरे में भगवान के साथ वह सवर्ण समाज भी खड़ा हो जाता है जो अमानवीय व्यवस्था का सूत्रधार है। अछूत की फरियाद हैः-

ßहमनी के राति दिन दुखवा भोगत बानी,
हमनी के सहेबे से मिनती सुनाइब।
हमनी के दुख भगवनओं न देखताजे,
हमनी के कबले कलेसवा उठाइब।

अर्थात् हम जो रात-दिन भोगते हैं, हम भी साहब से फरियाद करेंगे। हमारे दुखों को भगवान भी नहीं देखता कि हम कैसे-कैसे क्लेश उठाते हैं। हमारा मन करता है कि पादरी साहब की कचहरी में जाकर हम भी अंग्रेज बन जाएँ, पर हमसे अपना धर्म नहीं छोड़ा जाता। खंभा फाड़ कर प्रह्लाद को बचाने वाला, मगर के मुँह में गजराज को बचाने वाला, दुर्योधन से द्रौपदी की कपड़ा बढ़ा कर रक्षा करने वाला, कनकी उंगली पर पहाड़ उठाने वाला, हमारे क-ट दूर क्यों नही करता? क्या डोम जान कर वह हमें छूने से डरता है। हम कीचड़ से पानी निकाल कर पीते हैं। पनही (जूते) से पीट-पीट कर हमारे हाथ पैर तोड़ दिए जाते हैं। हमें इतना क्यों सताया जाता है?

स्वामी अछूतानन्द ^आदि हिन्दू* पत्रिका निकालते थे। इस पत्रिका में दलित अत्याचारों की खबरे छपती थीं। उत्तर भारत में दलित पत्रकारिता की शुरुआत उन्हीं से मानी जाती हैं। उनकी 1912 की लिखी एक कविता उपलब्ध है जो ^मनुस्मृति* पर सवालिया निशान लगाती है। कविता का क्रान्तिकारी तेवर बेलौस ढंग से अपना पक्ष रखता है।

आंबेडकर के दर्शन का हिन्दी की प्रगतिशील काव्यधारा पर खासा प्रभाव पड़ा। प्रगतिशील साहित्य में जो शोनित-मजदूर वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति का भाव मिलता है, वह प्रकारांतर से दलित चेतना के मानवीय सरोकारों की तार्किक स्वीकृति का ही एक रूप है।

6.2.3 समकालीन दलित कविता

सातवें दशक की कविता में जो व्यवस्था विद्रोह का स्वर तीव्रता से मुखर हुआ, दलित पैंथर ने छोड़े आंदोलन से जगी चेतना ने पूरे मनु-य की अवधारणा को प्रस्तावित किया वह पूरा मनु-य दलित चेतना के एक पर्याय के रूप में उभरा। समकालीन मराठी और हिन्दी दलित कविता लगभग एक साथ आयी। सत्तर के दशक में बकायदा ^दलित साहित्य* नामकरण से जो साहित्यिक धारा अस्तित्व में आयी, उस पर छठे दशक की अनेक कविता, गद्य और वैचारिक पुस्तकों ने युगांतकारी असर डाला। यह रचनालोक फुले-आंबेडकर व मार्क्स के

दर्शन से काफी हद तक प्रभावित है। चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु, ललई सिंह यादव, अंगने लाल, सुंदर लाल सागर, डॉ. डी.आर जाटव, रजनीकांत शास्त्री, रामस्वरूप वर्मा, लालचंद्र राही, बदलू राम रसिक जैसे रचनाकारों की कविता और गद्य पुस्तकों के साथ आंबेडकर , भदंत आनंद कोसल्यायन, राहुल सांकृत्यायन, अछूतानन्द, रामस्वामी नायकर की वैचारिक पुस्तकों के प्रकाशन ने दलित रचनाकारों की समकालीन पीढ़ी को मजबूत वैचारिक आधार और समृद्ध संवेदना संसार का बल मिला।

दलित रचनाकारों ने जो भोगा था, उसकी चेतना समकालीन दलित साहित्य की केन्द्रीय वि-ाय-वस्तु बनी। इस दृ-टि से मराठी के दया पवार की ^अछूत* (आत्मकथा) पहली रचना है। फिर तो मराठी व हिन्दी की अनेक आत्मकथाएँ आयीं, जिनमें मराठी की ^अक्करमाशी*, ^उठाईगीर* और हिन्दी में मोहनदास नैमिशराय की ^अपने-अपने पिंजरे* तथा ओमप्रकाश वाल्मीकि की ^जूठन* जैसी कृतियों ने साहित्य संसार को नये साहित्यिक तेवरों से परिचित कराया। इस धारा ने परंपरागत साहित्य के आभिजात्य को हिलाकर रख दिया। अब दलित साहित्य समकालीन हिन्दी साहित्य के विमर्श की मुख्यधारा के रूप में उभरा है।

हिन्दी की समकालीन दलित काव्यधारा में अनेक रचनाकारों की मजबूत उपस्थिति दर्ज हुई है, जिनमें मलखान सिंह, ओमप्रकाश वाल्मीकि, जयप्रकाश कर्दम, दयानंद बटोही, जयप्रकाश लीलवान, मोहनदास नैमिशराय, असंग घो-ा, सी.बी. भारती, सुशीला टाकभौरे, विपिन बिहारी, नवेन्दु महर्-ि, सुखवीर सिंह, कंवल भारती सरीखे अनेक सशक्त हस्ताक्षर सक्रिय हैं।

6.3 संकलित दलित कवियों का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

जयप्रकाश कर्दम और दयानंद बटोही समकालीन दलित कविता के सशक्त हस्ताक्षर हैं। भारतीय समाज की अमानवीयता के विभिन्न संदर्भों के एक महत्त्वपूर्ण पक्ष दलित उत्पीड़न, संघ-ार्ा और आकांक्षा को संवेदनशीलता से रू-ब-रू कराने वाले साहित्यकारों में जयप्रकाश कर्दम व दयानंद बटोही का नाम सम्मान से लिया जाता है। इनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है:-

जयप्रकाश कर्दम : जयप्रकाश कर्दम का जन्म 5 जुलाई 1958 को इन्द्रगढ़ी, ग़ाजियाबाद उत्तर प्रदेश में हुआ। दर्शनशास्त्र और हिन्दी साहित्य में एम.ए.करने के बाद, ^राग दरबारी का समाजशास्त्रीय अध्ययन* वि-ाय पर शोध कर पीएच.डी. उपाधि प्राप्त की। दो उपन्यास - ^छप्पर और करुणा*, ^गूंगा नहीं था मैं* कविता संग्रह प्रकाशित हुए हैं- ^तिनका-तिनका आग* कविता संग्रह है। दो आलोचना पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं- ^इक्कीसवीं सदी में दलित आंदोलन*, ^आंबेडकरवादी आंदोलन : दशा और दिशा*। ^जाति : एक विमर्श*, ^धर्मान्तरण और दलित*, ^दलित साहित्य वार्-िकी* के 2000 से 2006 तक अंकों का कर्दम जी ने संपादन किया है।

डॉ. दयानंद बटोही : डॉ. दयानन्द बटोही का जन्म 1 अक्टूबर 1942 को वादो, नालंदा, बिहार में हुआ। तीन वि-ायों में एम.ए. करने के साथ ही इन्होंने ^फणीश्वरनाथ रेणु के नारी पात्र* वि-ाय पर पीएच.डी. की उपाधि हासिल की। प्रकाशित कृतियाँ हैं - ^कफनखोर* (कहानी संग्रह), ^यातना की आँखें* (नवगीत संग्रह), ^नया दर्द* (कविता संग्रह), ^यातनाओं की ग़ज़लें (कहानी संग्रह), ^साहित्य के आईने में* (निबंध संग्रह), साहित्यकारों के साथ* (संस्मरण), ^युगपुरु-ा* डॉ. आंबेडकर (महाकाव्य)।

डॉ. बटोही हिन्दी के साथ-साथ मगही में भी लेखन करते हैं। इन्होंने सारथी (मगही), नई लहरें, साहित्य यात्रा जैसी पत्रिकाओं का संपादन भी किया है। शांति प्रियदर्शी पुरस्कार ^यातना की आँख* के लिए, मगही साहित्य अकादेमी पुरस्कार ^कफनचोर* कहानी संग्रह के लिए दिया गया।

6.3.1 जयप्रकाश कर्दम

दलित चेतना परिवर्तन के दौर से गुजरती हुई निरंतर शिखर की ओर बढ़ने वाली ऊर्ध्वगामी चेतना है। इसका अंतिम लक्ष्य मनु-य के जीने हेतु, समानता भाईचारा और स्वतंत्रता की जरूरी शर्तों की प्राप्ति है। समानता के कार्य में निहित है कि मानवीय संबंधों के स्तर पर कोई श्रे-ठ या सर्वश्रे-ठ नहीं है, न ही जन्म के कारण और यूँ ही धन के बल या कर्म अथवा भाग्य के कारण, यानी एक शो-ाण रहित - जातीय भेदभाव रहित, मानवीय समाज की सूत्रता ही इसका अभी-ट रहा है। इस अवधारणा में दूसरे पर वर्चस्व स्थापित करना नहीं बल्कि एक-दूसरे के स्वामी या दास नहीं, बल्कि समता के सूत्र में बंधा मानवीय संवेदनाओं से ओत-प्रोत मानव समूह की कल्पना है। एक-दूसरे के सहयोगी बनकर जीना, समूह में जीना इसका संचारी भाव है। इस चेतना के तहत व्यक्ति प्रमुख न होकर समाज प्रमुख होता है। स्वहित और परहित मिल-जुलकर साथ-साथ चलते हैं। यह भी सत्य है कि समानता बिना स्वतंत्रता आ नहीं सकती और जहां वर्चस्व और दासता की व्यवस्था होगी, वहाँ स्वतंत्रता हो ही नहीं सकती। मूलतः यही दलित चेतना का सैद्धांतिक पक्ष है जिसे पेरियार, फुले और आंबेडकर ने रूप दिया। यही दलित आंदोलन और साहित्य का मूल स्रोत है, जिसे दलित साहित्यकार पु-ट करने में लगा हुआ है।

जयप्रकाश कर्दम हिंदी दलित साहित्य के वरि-ठ लेखकों में से एक हैं। अपनी चेतना और सोच से इन्होंने दलित आंदोलन को आगे बढ़ाया है। कर्दम ने साहित्य के क्षेत्र में अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है और विविध विधाओं में रचनाएँ लिखी हैं।

विशि-ट दलित चिंतक व साहित्यकार जय प्रकाश कर्दम का जन्म 5 जुलाई, 1958 को इंदरभद्री, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश में हुआ। शिक्षा के क्षेत्र में भी उन्होंने एक मुकाम हासिल किया। कुछ करने की तमन्ना लिये कर्दम ने दर्शनशास्त्र हिंदी और इतिहास में स्नातकोत्तर किया है और हिंदी में पीएच.डी. की उपाधि पायी है। वर्तमान में वे संस्कृति मंत्रालय में कार्यरत है।

अब तक इनके तीन उपन्यास छपे हैं। ^करुणा*, ^छप्पर* और ^श्मशान का रहस्य* इनके उपन्यासों में दलित जीवन की सघन और संश्लि-ट दुःख-यातना का वास्तविक व यथार्थ चित्रण किया है। उनके उपन्यास दलित जीवन की आत्मकथा प्रस्तुत करते हैं। दरअसल दलित उपन्यास आत्माभिव्यक्ति का ही विस्तार हैं और इनमें व्यवस्था ने दिए अनगिनत दुःख, दर्द, वंचना, अपमान के अमानवीय प्रसंगों का सृजनात्मक विस्तार दिया है।

^गूंगा नहीं था मैं* उसकी कविताओं का एक मात्र संग्रह है। यह कविता-संग्रह दलित कविता को एक दिशा प्रदान करता है। इस संग्रह की कविताएँ विचार की दृ-टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। वर्तमान दलित आंदोलन, आंबेडकरवादी आंदोलन : दशा और दिशा, और बौद्धधर्म के आधार स्तम्भ उनकी विचारपरक कृतियाँ हैं। यह कृतियाँ दलित सोच विचार एवं दृ-टि को आधार प्रदान करती हैं। इसमें सामयिक वि-नयों पर कर्दम ने मौलिक, तार्किक व बेबाक विचार प्रस्तुत किए है।

6.3.2 दयानंद बटोही

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद दलितों को भारतीय स्वशासन से अनेक अपेक्षाएँ बनी थीं। पर उनकी अपेक्षाएँ एक स्वप्न बनकर रह गयीं। वैसे, समाज और व्यक्ति के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन तो होना शुरू हो चुका था लेकिन व्यवस्था जस की तस थी। सामाजिक वि-ाय व्यवस्था के कारण दलितों आदिवासियों में वेदना और विद्रोह जन्मा। यही विद्रोह दलित साहित्य की धार बन गया। इसमें कोई शक नहीं कि दलित चेतना को उजागर करने में दलित समाज को डॉ. आंबेडकर के शिक्षा, संघ-र् और संगठन के सूत्रों ने लैस किया और दलित शिक्षित होने के लिए संघ-र्रत हुए तथा संगठित होने की तरफ मुड़े। इसके लिए उन्हें बीहड़ संघ-र् करने पड़े चूंकि भारतीय समाज व सरकार की इच्छा अभी भी दलितों को शिक्षित होने देने की नहीं थी। डॉ. आंबेडकर ने जमीनी आंदोलन के साथ-साथ साहित्यिक आंदोलन का सहारा भी लिया। उन्होंने दलित युवकों को अपनी पीड़ा के अनुभव कलमबद्ध करने के साथ-साथ परिवर्तन की दिशा के लिए संकल्पित होने हेतु आह्वान किया। महारा-ट्र में दलित साहित्य आंदोलन इतना जबरदस्त और सार्थक तथा प्रभावकारी सिद्ध हुआ कि तथाकथित मुख्यधारा का साहित्य चाहने के बावजूद भी इसे नकार नहीं सका। इतना ही नहीं 'जलसा* के माध्यम से दलित कलाकार, रंगकर्मी तथा लोकगीतों के माध्यम से लोकगायक गांव-गांव में आंबेडकर का संदेश लेकर पहुंचे और दलित समाज में एक प्रकार की सांस्कृतिक क्रांति ने जन्म लिया। वे लोग सवर्ण जमींदारों के यहाँ समारोहों तथा मनोरंजन के लिए विवाहों में सदैव बुलाए जाते थे। ऐसे समारोहों में भी दलित कलाकारों ने पहले आंबेडकर के संदेश या उनके द्वारा बताए गए सूत्रों के गीत गाने के बाद ही मनोरंजन कार्य करने की शर्तें रखीं। गांव-गांव में लोगों ने इस चेतना को जागृत करते हुए सबसे पहले भौतिक स्तर पर खुद को बदलना शुरू किया। जैसे, मरे हुए जानवरों का मांस खाना बन्द किया, अमानवीय यातनाएं सहकर भी उन्होंने जहां तक बन सका बच्चों को शिक्षित करने का प्रयास किया तथा विभिन्न दलित शैक्षणिक, साहित्यिक, सामाजिक व सांस्कृतिक संगठनों का गठन शुरू किया। इस तरह दलितों ने कठिन संघ-र् का परिचय दिया।

इसी तरह का साहित्यिक आंदोलन हिंदी भा-ा-भा-ी क्षेत्रों में भी 20वीं शताब्दी के अंतिम दशक में शुरू हुआ। गो-ठियों, वाद-विचार, जयन्तियों आदि के मौकों पर डॉ. आंबेडकर के विचारों को मजबूती से रखा गया। राजनीतिक स्तर पर दलितधर्मी पार्टियों का संगठनात्मक प्रयास तेज हुआ और उसके समर्पित कार्यकर्त्ताओं ने दलितों को जागरूक करने का भरपूर प्रयास किया। परिणामस्वरूप जन-जागरण अभियान तेज हुआ। मान्यवर कांशीराम और मायावादी के नेतृत्व मे जनता ने एकजुटता दिखाई और बसपा की सरकार बनी। भले ही इसने कुछ और न किया हो लेकिन दलित सशक्तीकरण और अस्मिता उभार में मदद की है। इन्हीं मिले-जुले प्रभावों के परिणामस्वरूप हर प्रान्तों में साहित्यकारों की बाढ़ सी आई। दलितों पर देशी-विदेशी शोधार्थियों द्वारा शोधकार्य तेजी से हुए और उसके तथ्यात्मक विश्ले-ाण सामने आये। जनता उससे परिचित हुई और दलित मुक्ति आंदोलन की गतिविधियाँ तेज हुईं। कहना न होगा कि इस आंदोलन ने सैकड़ों लेखकों को पैदा किया। दयानंद बटोही इसी मुक्ति आंदोलन की धारा में सामने आये।

6.4 'आज का रैदास' : विद्रोही चेतना की कविता

परंपरागत भारतीय समाज की यह निर्मम सच्चाई है कि प्रायः ज्ञान की दुनिया और श्रम की दुनिया अलग-अलग रही है। ज्ञान की दुनिया का श्रम की दुनिया से कोई रिश्ता नहीं रहा और हाथ से काम कर आजीविका चलाने वाले लोगों को दूसरे दर्जे की सामाजिक हैसियत दी गयी। उन्हें अवर्णों और अंत्यजों का दर्जा दे शो-ाण की एक ऐसी रूढ़ि विकसित की गयी, जिसे 'न्यायोचित आदर्श* का दर्जा मिला। साथ ही ज्ञान की दुनियाँ

उनके लिए निषिद्ध कर दी गयी। ज्ञान की दुनिया ने सवर्णों के आभिजात्य को सुरक्षित करने के लिए विभिन्न आदर्शों, विधानों व धार्मिक कुहेलिकाओं का निर्माण किया। ^आज का रैदास* कविता तथाकथित निम्न वर्ण के एक ऐसे पिता और बच्चे की त्रासदी का मार्मिक बयान करती है, जिसकी ज़द से ज्ञान और समृद्धि की दुनिया बार-बार फिसल जाती है। कविता का नयापन इस संदर्भ में लक्षित किया जा सकता है कि पिता बेबसी को नियति के रूप में स्वीकार न कर विद्रोही चेतना की मुखर अभिव्यक्ति करते हुए नये सामाजिक सौन्दर्य के प्रति अपनी पक्षधरता प्रकट करता है। बकौल जयप्रकाश कर्दमः-

ß्ई-या, ग्लानि और क्षोभ से भरकर
व्यवस्था के जूते में
आक्रोश की कील
ठोंक देता है।Þ

6.4.1 आज का रैदास : मूल प्रतिपाद्य

रैदास प्रसिद्ध संत कवि थे, जिनकी भक्ति में आत्मदया और निरीहता का भाव काफी हद तक सक्रिय था। उन्होंने अपने भक्तिपूर्ण दोहों में अनेक स्थानों पर आत्मपरिचय भी दिया है। उन विवरणों के अनुसार वे जाति के चमार थे और उनके कुनबे की आजीविका का साधन मरे हुए जानवरों के चमड़ों से जुड़ा था। इस पारंपरिक संदर्भ की मिथकीय पृ-ठभूमि में मौजूदा दौर की विद्रोही चेतना की प्रभावी प्रस्तुति करना कवि का उद्देश्य है। पारंपरिक रैदास की आधुनिक रैदास तक की यात्रा में रूढ़िग्रस्त भारतीय समाज की कई मान्यताएँ बदल जाती हैं तो कई ढह जाती हैं। जयप्रकाश कर्दम की इस कविता का शी-र्क ßआज का रैदासÞ है। कविता का नायक रैदास पारंपरिक रैदास से अलग है। वह आत्मदया और निरीहता में ही अपनी नियति स्वीकार करने के स्थान पर, उस व्यवस्था को लानत-मलामत भेजता है, जहाँ उस जैसे के लिए बेहतर शिक्षा का विकल्प तो नदारद है ही, उसकी आने वाली संतति को भी आभासी शिक्षा का ही विकल्प उपलब्ध है। कविता की शुरुआत आज का रैदास के परिचय से होती है-

ßशहर में कॉलोनी
कॉलोनी में पार्क
पार्क के कोने पर
सड़क के किनारे
जूती गाँठता है रैदास।**

ßपर रैदास के बाद की पीढ़ी, पढ़-लिख कर आगे बढ़ना चाहती है, पिता उसे कुल का ^भू-ाण* समझता है। पर इस कुलभू-ाण के आड़े आती है - दरिद्रता और दीनता। इस दरिद्रता और दीनता से वह लगातार हीनता बोध का शिकार होता जाता है। समाज और सरकार के जनकल्याणकारी मुखौटों के भीतर उसे विकल्प हासिल होता है। पर वह विकल्प ^शिक्षा* की जगह ^आभासी शिक्षा* है। उसका नाम सरकारी स्कूल में दर्ज है। क्रूर पक्ष यह है कि वहाँ भी कॉपी, किताब और कपड़े के अभाव में उसे स्कूल जाना कई बार स्थगित करना पड़ता है।

उसके रहे-सहे अस्तित्व की चूलों को हिलाने के लिए रोज़ाना घटने वाला वे धारावाहिक दृश्य हैं, जिनमें पब्लिक स्कूल के तथाकथित संभ्रान्त या कुलीन संसार तन्त्र हैं। वहाँ आपसी संवाद की भा-ा अंग्रेजी है, जो उसके लिए किटिर-पिटिर मात्र है। दिव्यता और भव्यता की गाड़ी में सवार होने के लिए उसका मन रोज़ाना ललचता है। वह अपने रैदास पिता से पूछता है कि उसके लिए ऐसे स्कूल क्यों नहीं हैं? इस सवाल से रैदास की बेबसी

और भी तार-तार होती नज़र आती है। अभाव और उत्पीड़न के लंबे सिलसिले याद आते हैं। एक तरफ़ सामंती ढाँचा-दूसरी तरफ़ ग़रीबी, अभाव व उत्पीड़न का वह नंगापन जिसे ढंकने की सामर्थ्य उसके पास फ़िलहाल नज़र नहीं आती। कविता का खूबसूरत पक्ष यह है कि यह आधुनिक रैदास नियति को स्वीकार नहीं करता। भूख और बेबसी उसे व्यवस्था में हस्तक्षेप के लिए प्रेरित करती है। कवि का कहना है, वह व्यवस्था के जूते में आक्रोश की कील ठोक देता है। कविता इस इशारे के साथ ख़त्म होती है, पर इस हस्तक्षेप से पूरी व्यवस्था की मान्यताएँ दरकती हुई नज़र आती हैं।

6.4.2 काव्यगत संवेदना

भारतीय समाज में संसाधनों की कमी नहीं है। सारी अव्यवस्थाएँ संसाधन के असमान वितरण के कारण पैदा हुई हैं। सामंती समाज ने वर्ण और जाति की व्यवस्था द्वारा सत्ता और संसाधनों के केन्द्रीकरण के सिद्धान्त को दैवी और दार्शनिक चोला पहनाया। इस व्यवस्था का सर्वाधिक क्रूर पक्ष यह है कि यह श्रमशील बहुजन के अमानवीय शो-ाण पर आधारित है। इस व्यवस्था में श्रम करने वाला वर्णाधम, उपेक्षित, दलित व घृणित है तो उस श्रम पर पलने वाला परजीवी वर्ग वर्णश्रे-ठ, श्रद्धास्पद और सुविधा प्राप्त।

^आज का रैदास* कविता बारीक़ी से इस व्यवस्था के भद्देपन और अमानवीयता से हमें अवगत कराती है। काव्यगत संवेदना उस समय अपने पुरअसर तेवर में प्रकट होती है, जब रैदास, आज के रैदास में रूपांतरित होता नज़र आता है। वह व्यवस्था में अपनी व संततियों की नियति आत्मदया व निरीहता के खाने में समर्पित व आत्ममुग्ध देखने के स्थान पर व्यवस्था की बुनियाद को हिलाने की कील ठोकता है। यहाँ वह रूपान्तरण की सार्थकता का विस्तार करता है। कविता पारंपरिक सौन्दर्यबोध को सिरे से खारिज करती है। दुनियावी उत्पीड़न, बदसूरती और मानसिक यन्त्रणा से कविता आँख चुराकर किसी काल्पनिक दुनियाँ या स्वप्नलोक की तरफ़दारी नहीं करती, बल्कि उनका सामना कर जूझने का आह्वान करती है। काव्यगत संवेदना आधुनिकता बोध से लबरेज है, जहाँ शो-ाण के असली कारणों की पहचान है, उसके उत्पीड़न व दमन का प्रभावी चित्रण है और सबसे बड़ी बात उससे असहमत हो संघर्-ा का आह्वान भी।

6.4.3 आज का रैदास : भवि य दृ टि का प्रश्न

^आज का रैदास* कविता नियति को चुपचाप स्वीकार कर, दैवी आदेश या पूर्वजन्म की कुहेलिका में जीवन की अर्थवत्ता प्रस्तावित नहीं करती। कविता दलितों-शोन्तिों के लिए नख-दंत विहीन अर्थहीन पारंपरिक वर्णवादी दर्शन के स्थान पर, संघर्-ा के उस दर्शन के प्रति पक्षधरता प्रकट करती है, जहाँ भवि-य दृ-टि का प्रश्न सक्रिय है। कविता का नायक रैदास पारंपरिक रैदास से अलग है। यह रैदास आत्मदया, उत्पीड़न या भाग्यवाद को चुपचाप स्वीकार नहीं करता, उसकी निगाह भवि-य के उस समरूप समाज पर टिकी है, जहाँ उस जैसे असंख्य श्रमशील लोगों के लिए सम्मानजनक स्थिति या परिवेश उपलब्ध है। जब उसका बेटा पूसन यह मासूम-सा सवाल पूछता है कि उसके कपड़े वैसे क्यों नहीं हैं, जैसे सम्भ्रान्त परिवार के उन बच्चों के हैं जो उसी के पास से रोज़ाना पब्लिक स्कूल की बसों पर सवार हो, स्कूल जाते हैं, जिनके कंधों पर खूबसूरत बैग हैं और हाथों में वाटर बॉटल? तब रैदास का मन छलनी हो जाता है, उसे लाचारी व बेबसी के शूल बुरी तरह चुभते महसूस होते हैं। जहाँ एक ओर हंसते खिलखिलाते बच्चे हैं, वहीं दूसरी ओर रैदास का फटेहाल बेटा पूसन है जो ऐन उसी वक्त चमड़े के टुकड़े, पालिस की डिबिया और ब्रुशों को उलट-पुलट रहा है। भूख और बेबसी से अभिशप्त रैदास व्यवस्था रूपी जूते में आक्रोश की कील ठोंक देता है, यानी दुखद वर्तमान के बरअक्स उसकी भवि-य दृ-टि

सक्रिय होती है। कविता का यह संदेश रैदास के बेटे पूसन और उसकी पीढ़ी के अन्य शोनित बच्चों के लिए संभावनाओं के साथ समाप्त होती है।

6.5 'द्रोणाचार्य सुनें : उनकी परंपराएँ सुनें ' : दलित अतीत की छानबीन

दयानंद बटोही रचित ^द्रोणाचार्य सुनें : उनकी परंपराएँ सुनें* कविता दलित अतीत की छानबीन करती है। कविता महाभारत के मिथकीय अतीत की उस निति पर टिकी है, जहाँ गुरुदक्षिणा में विलक्षण प्रतिभाशाली धनुर्धर का अंगूठा वर्णवादी गुरु द्रोणाचार्य माँग लेते हैं। अंगूठे की बलि इसलिए माँगी जाती है कि गुरु, क्षत्रिय अर्जुन की राह में आने वाले किसी भी असुरक्षाबोध को हमेशा के लिए दूर करना चाहते हैं। काव्यनायक एकलव्य गुरु के इस व्यवहार से हतप्रभ है, बावजूद इसके वह गुरुदक्षिणा चुकाता है। पर आने वाली पीढ़ी के लिए ऐसी नियति स्वीकार न करने का वह संदेश देता है। वह द्रोणाचार्य व उनकी परंपराओं को तीक्ष्ण प्रश्नों से बींध डालता है और अपनी भवि-य दृ-टि आने वाली संततियों के पक्ष में यह कहते हुए गढ़ता है कि- ßपरंपराओं को निभाने में/अब कोई विश्वास नहीं करता।Þ

कविता गुरु द्रोणाचार्य के उस दोमुँहेपन पर प्रहार करती है, जहाँ आदर्श ^जन्म से कोई अछूत नहीं होता है*, पर व्यवहार यह है कि तथाकथित वर्णाधम विलक्षण धनुर्धर को भवि-य के असुरक्षा बोध के स्थान पर नि-कंटक सफलता दिलायी जा सके। काव्यनायक एकलव्य द्रोणाचार्य व उनकी परंपराओं को साफ़ तौर पर चुनौती देता है कि ßहे गुरु! तुम्हारी परंपराएँ अब बहुत दिनों तक नहीं चलेंगी/क्योंकि अब एकलव्य कोई नहीं बनेगा।Þ वह अपनी पीढ़ी व बाद की संततियों को आगाह कर देता है कि द्रोणाचार्य जैसे गुरुओं की अंधलिप्सा का शिकार होने के स्थान पर अमानवीय व्यवस्था से असहमत हो बेहतर विकल्प तलाशने के दर्शन को स्वीकार किया जाय। यह दर्शन द्रोणाचार्य व उनकी परंपराओं के स्थान पर आंबेडकर व उनकी परंपराओं का श्रे-ठ विकल्प प्रस्तावित करती है, बकौल कवि, ßमैं आगाह कर दिया करता हूँ/बनना ही है तो द्रोणाचार्य जैसे गुरु का शि-य/कोई क्यों बने?/ बनना ही है तो डॉ. आंबेडकर का शि-य बनो/बाईस घंटे उन जैसा पढ़ो/गढ़ो संविधान और कानून।Þ

कविता दलित अतीत की छानबीन करती हुयी भवि-य दृ-टि के पक्ष में अपनी उपस्थिति दर्ज करती है।

6.5.1 कविता के परिप्रेक्ष्य में : इतिहासबोध और दलित चेतना

हमारी परंपरा में जाने-अनजाने अनेक ऐसी रूढ़ियों का निर्वाह होता है, जिनमें श्रे-ठता और आभिजात्य के दंभ को सांस्कृतिक और वैधानिक आधार प्रदान किया जाता है। वर्ण-व्यवस्था ऐसी रूढ़ियों में सर्वोपरि है। सैद्धान्तिक रूप से इसे कर्म विभाजन कहा गया और यह आकर्-क प्रकल्पना प्रस्तुत की गई कि जन्म से सभी समान होते हैं, कर्म से उनका वर्ण तय होता है। पर क्रूर यथार्थ यह रहा है कि इस सिद्धांत का व्यावहारिक पक्ष था - ज्ञान और श्रम की दुनिया की नियति जन्म से पहले तय की जाय। इतना ही नहीं ज्ञान की बेहद सुरक्षित और खौफ़नाक चारदीवारी को श्रम की दुनिया के बहुसंख्यकों से निरंतर निनिद्ध बनाए रखने के लिए दैवी न्याय और दुनियावी कानून का सहारा लिया गया। संहिताएँ और पुराणों की गिरफ्त में श्रमशील बहुजन को उलझाकर, उन्हें वर्णाधम और निकृ-ट की पदावली दे उनकी भूमिका का निर्धारण नियामक शक्तियाँ करती रहीं। इसे ^द्रोणाचार्य सुनें: उनकी परंपराएँ सुनें* से बखूबी

समझा जा सकता है द्रोणाचार्य का मिथक उसी वर्णश्रे-ठ परंपरा का नृशंस उदाहरण है। द्रोणाचार्य जिस वर्णवादी दुर्ग को गठते हैं, उसमें एकलव्य और अर्जुन का भवि-य, उनमें निहित प्रतिभा से निर्धारित नहीं होती, बल्कि द्रोणाचार्य की वर्णवादी दृ-टि से यह मसला तय होता है।

गुरुदक्षिणा के रूप में एकलव्य का अंगूठा माँगना उसकी प्रतिभा के उन पंखों को बेरहमी से नोचना है, जिसके बल पर वह दुनिया के आसमान में अपनी भूमिका का निर्धारण कर सकता था। लेकिन गुरु द्रोणाचार्य ने ऐसा ही किया। तथाकथित वर्णश्रे-ठता का दंभ और व्यावहारिक सच Mजन्म से सभी समान* के दार्शनिक सिद्धान्त पर भारी पड़ा। कविता का सबसे सुंदर पक्ष यह है कि इस इतिहासबोध पर दलित चेतना तर्कशील और मुखर ढंग से सवालिया निशान लगाती है।

कविता में एक ऐसा एकलव्य अपनी समग्र चेतना से प्रस्तुत होता है जो द्रोणाचार्य और उसकी परंपराओं से श्रमशील बहुजन को यह कहता हुआ सचेत करता है कि द्रोणाचार्य जैसे गुरु की अमानवीयता और नृशंसता से जूझने का विकल्प है आंबेडकर की शि-य परंपरा स्वीकार करना। इस तरह कविता पारंपरिक इतिहासबोध को आधुनिक दलित चेतना के न्यायोचित और मानवीय तर्क से परखने का आह्वान करती है।

6.5.2 दासता का अनुभव उसके अंत की घो ाणा है

मुख्यधारा की आदर्शवादी दार्शनिक पीठिका तथाकथित अवर्णों के लिए चतुराईपूर्वक ऐसी व्यवस्था का निर्माण करती रही, जिसमें उनके श्रम का दोहन भी हो और उन्हें यह अहसास तक न हो कि इस व्यवस्था के प्रति उन्हें असहमत होना चाहिए। असहमति के स्वरों को परंपरा और इतिहास की मुख्यधारा में या तो उपेक्षित किया गया या फिर न-ट। बृहस्पति के सूत्र, चार्वाक दर्शन, बौद्धों-नाथों की असहमति को इन्हीं संदर्भों में देखा जा सकता है।

पर आधुनिक काल के ज्योतिबा फुले और आंबेडकर जैसे युगांतकारी चिन्तक व्यापक दलित और श्रमशील बहुजन में यह अहसास कराने में समर्थ हुए कि वस्तुतः उन्हें दार्शनिक और धार्मिक सिद्धान्तों की आड़ में अमानवीय शो-ण का शिकार बनाया गया। छुआछूत, बहि-कार जैसे हथियारों का उपयोग सवर्णों के दुर्ग को सुरक्षित रखने के लिए किया गया। दलित साहित्य की पीठिका ऐसे अमानवीय दर्शन का प्रतिपक्ष गढ़ती है।

m)j.k

दयानंद बटोही की ßद्रोणाचार्य सुनें : उनकी परंपराएँ सुनेंÞ कविता के नायक एकलव्य को जब दासता का अनुभव होता है तब द्रोणाचार्य की पूरी परंपरा दरकती नज़र आती है। एकलव्य द्रोणाचार्य की परंपरा को लानत-मलामत भेजते हुए कहता है - Mद्रोण की परंपरा के पृ-ठपो-नक सुनो/अब और जाल मत बुनो!/जाल को रहने दो/अंधेरे की गहन गुफ़ा को घाव सहने दो/जाओ द्रोण जाओ दर्द को हरियाने दो/ एकलव्य मैं पहला था, आज भी हूँ/अब जान गया हूँ/अंगूठा दान क्यों माँगते हो?**

एकलव्य को अपनी पीढ़ी व बाद की शोनित-पीड़ित वर्णाधम पीढ़ी के न्यायोचित व मानवीय भवि-य की चिन्ता है। कहना न होगा, असहमति का यह विवेक उसे लंबे और नृशंस दासता के अनुभवों से हासिल होता है।

6.5.3 'द्रोणाचार्य सुनें : उनकी परंपराएँ सुनें' : वर्णवादी परंपरा में दलित दखल

वेदव्यास कृत महाभारत के आदिपर्व में द्रोणाचार्य और एकलव्य का प्रसंग आया है। द्रोणाचार्य के पास हिरण्यधनु नि-ाद का बेटा एकलव्य अस्त्रशिक्षा प्राप्त करने आया। पर नि-ादपुत्र होने के कारण गुरु ने शिक्षा देने से इन्कार कर दिया। धुन के पक्के एकलव्य ने द्रोणाचार्य की मिट्टी की मूर्ति बनाकर अस्त्र-विद्या का अभ्यास आरंभ कर दिया। एक दिन धृतरा-ट्र पुत्र कौरव व पाण्डु पुत्र पाण्डव जब जंगल शिकार करने गये, तब उनका कुत्ता भी उनके साथ गया। जंगल में भटकते कुत्ते ने जब लंबी-लंबी जटाओं वाले धूल धूसरित एकलव्य की समाधिस्थ देखा, तब भौंकने लगा। एकलव्य ने खीझ कर इस तरह सात बाण चलाए कि कुत्ते का मुँह बंद हो गया। व्याकुल हो कुत्ता पाण्डवों के पास भागा। शब्दवेधी बाण की यह कला राजकुमारों को नहीं आती थी, वे काफ़ी लज्जित हुए। अर्जुन ने गुरु द्रोण को एकांत में याद दिलाया कि आपने कहा था, संसार का सबसे बड़ा धनुर्धर मैं बनूँगा, फिर ऐसा क्यों हुआ? गुरु जंगल में एकलव्य के पास पहुँचे और कहा यदि तुम सचमुच मुझे गुरु मानते हो तो गुरु-दक्षिणा में अपने दाहिने हाथ का अँगूठा दो। एकलव्य ने ऐसा ही किया। अब उसकी धनुर्विद्या में वह कौशल न रहा, जो पहले था। कहना न होगा द्रोणाचार्य का यह कृत्य वर्णवादी मानसिकता की पैठ का मार्मिक साक्ष्य है।

ज्ञान के क्षेत्र में इस मानसिकता ने उच्च वर्णों के एकाधिकार को प्रोत्साहित किया। दयानंद बटोही ने इस रूपक का सहारा लेकर काव्य सत्य के रूप में एक ऐसे एकलव्य को प्रस्तावित किया है जो द्रोणाचार्य व उनकी परंपराओं से असहमत हो व उसकी संततियाँ तेजस्वी व न्यायशील आधुनिक स्वप्नद्रष्टा आंबेडकर की वारिस बनें। कहना न होगा कविता 'वर्णवादी परंपरा में दलित दखल' के नवोन्मे-ा को काव्य-सत्य स्वीकार करती है।

6.6 दलित कविता के विश्ले ाण/साहित्यिक मूल्यांकन का प्रश्न पारंपरिक प्रतिमान

साहित्य-विश्ले-ाण के पारंपरिक मानक सौन्दर्यवादी या रूपवादी अवयवों को मूल्यांकन का आधार मानते हैं। पारंपरिक या भद्र कविता के रचनाकार का परिप्रेक्ष्य विशे-ाधिकार प्राप्त समाज या शासक वर्ग है। जाहिर सी बात है, शो-ाण या अमानवीय सत्ता या फिर बहि-कार के दं-ा से वे सर्वथा मुक्त रहे। यही कारण है कि प्राचीन काल में आत्मा, पुनर्जन्म, ब्रह्म, परलोक उनकी कविता के वि-ाय रहे, वहीं मध्यकाल में सौन्दर्य और रूप तत्व के प्रति उनकी सारी चेतना केन्द्रित रही। यही परंपरा आधुनिक काल में 'कलावादी' खेमे के रूप में चिन्हित की गई। ऐसा कहा जा सकता है कि एक हद तक पारंपरिक साहित्यिक प्रतिमान कलात्मकता के स्तर पर सर्वाधिक चौकन्ने रहे। पारंपरिक साहित्यिक प्रतिमान विश्ले-ाण के शास्त्र, काव्य-सिद्धान्तों की पद्धति, गंभीर विवेचन की भा-ा, कला और सौन्दर्य की बारीक पकड़ एवं समझ से हासिल किए जाते रहे। यह समझना काफ़ी आसान है कि पारंपरिक प्रतिमान का स्रोत शास्त्र अधिक हैं लोक कम। यहाँ लोक का अर्थ उस दलित-पीड़ित, शोि-ात और श्रमशील अवर्ण समाज से लिया गया है, जिन्हें भारतीय समाज में वर्णदशा के नस्तर से जूझते हुए निरंतर संघर्-ाशील जीवन गुज़ारने के लिए अभिशप्त होना पड़ा है। भद्र कविता के विवेचन-विश्ले-ाण के लिए बने पारंपरिक प्रतिमानों की पहुँच अवर्णों के उत्पीड़न और बहि-करण तक नहीं है। यही कारण है कि दलित कविता पारंपरिक प्रतिमानों के स्थान पर युगानुरूप नये प्रतिमानों की वकालत करती है।

6.6.1 दलित सौन्दर्यशास्त्र

दलित सौन्दर्यशास्त्र का संबंध भारतीय समाज में दलित मुक्ति से है। ऋग्वेद के दसवें मंडल के पुरु-ासुक्त में वर्णव्यवस्था की पहली चर्चा मिलती है। इसके अनुसार, ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, उदर से वैश्य और पैर से शूद्र का जन्म हुआ। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को द्विज कहा जाता है। द्विज का तात्पर्य है दूसरा जन्म। यह दूसरा जन्म उपनयन संस्कार से होता था। शूद्रों को उपनयन संस्कार का अधिकार नहीं था। वर्णव्यवस्था के अनुसार, इनका मुख्य कार्य द्विजों की सेवा है। समाज में स्वतंत्र अस्तित्व प्राप्त करना इनके लिए प्रतिबंधित है। 'मनुस्मृति* ने जन्मना श्रे-ठ के सिद्धान्त को कट्टरतापूर्वक प्रचलित कर दिया। भारत की बहुसंख्यक श्रमशील जनता को भेदभाव का शिकार बनाया गया। छुआछूत, उत्पीड़न, सामाजिक बहि-कार की चेतना संस्थाबद्ध और वैधानिक तरीकें से क्रूरता की सारी हदें तोड़ने लगीं। बहुसंख्यक श्रमशील जनता के असहमत सुरों ने इस वर्णवादी आधिपत्य के खिलाफ़ अपनी आवाज़ को बुलंद किया।

दलित सौन्दर्यशास्त्र का संबंध भद्रलोक के खिलाफ़ इसी विद्रोही प्रतिपक्ष से जुड़ता है। यह सौन्दर्यशास्त्र दलित मुक्ति के सवाल को केन्द्रीय सवाल मानता है। आलोचकों का मानना है यह दरअसल रा-ट्रीय मुक्ति का प्रश्न है। भद्र कविता के पारंपरिक प्रतिमान बृहत दलित समाज के शो-ाण-उत्पीड़न व सामाजिक अलगाव को या तो अछूता छोड़ देते हैं, या इस तरह चर्चा करते हैं कि वर्णाश्रम पर प्रहार भी न हो और सतही प्रहारों की नुमाईश हो जाए। दलित सौन्दर्य-शास्त्र उत्पीड़न-बहि-करण और उपेक्षा के मर्म को बुनियादी सरोकार मानता है, बाकी सारे प्रतिमान आनु-ांगिक मूल्य हैं। इसे 'आज का रैदास* और 'द्रोणाचार्य सुनें : उनकी परंपराएँ सुनें* कविता के माध्यम से बखूबी समझा जा सकता है, जहाँ उत्पीड़न के मर्म का प्रभावी आख्यान है और भवि-य दृ-टि की चेतना सक्रिय है।

6.7 सारांश

भारतीय समाज में दलित मुक्ति का प्रश्न एक खुशहाल और जनतांत्रिक समाज के भावी स्वरूप से है। चौथे वर्ण या शूद्र जिसे आधुनिक शब्दावली में दलित कहा जाता है के सामाजिक संघ-र्ा का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना वर्णव्यवस्था का विधान। बृहस्पति, लोकायतों, बौद्ध दार्शनिकों, संत कवियों, ज्योतिबा फुले और आंबेडकर जैसे चिन्तकों ने जिन तार्किक व असुविधाजनक सवालों को उठाया, उनमें एक ऐसे समाज का सपना था, जहाँ ब्राह्मणवादी वर्णव्यवस्था के अमानवीय और नृशंस पहलू समाप्त हों तथा दलितों की मुक्ति के बाद एक न्यायशील व्यवस्था की स्थापना हो। दलित कविता का इतिहास इसी उत्पीड़न बोध और मुक्ति के सवालों से रू-ब-रू होता है। जयप्रकाश कर्दम रचित 'आज का रैदास* और दयानंद बटोही रचित 'द्रोणाचार्य सुनें : उनकी परंपराएँ सुने* पाठ के माध्यम से आपने इसे बखूबी समझा।

6.8 प्रश्न / अभ्यास

1) दलित कहानी की सोद्देश्यता पर विचार कीजिए।

2) दलित कहानी की कथावस्तु की आधारभूमि पर अपना मन्तव्य स्प-ट कीजिए।

3) दलित कहानी के सामाजिक सांस्कृतिक सरोकारों की निर्दि-ट कर सोदाहरण विश्ले-ाण कजिए।

4) सोपानीकृत श्रेणी विभाजन की असंवेदनशील, अमानवीय मिथ्या कल्पना के पीछे के उद्देश्यों पर विचार कीजिए।

5) "घृणा तुम्हें मार सकती है कविता हमारे लोकतांत्रिक और आधुनिक समझे जाने वाले समाज की घृणित सच्चाई की उजागर करती है'' इस कथन की पुन्टि कीजिए।

6) कवि द्वारा तब, तुम्हारी नि-ठा क्या होती? कविता में पौराणिक धर्मग्रंथों के छल को उद्घाटित किया है। इस कथन का सविस्तार विवेचन कीजिए।

7) ज्ञान की परंपरा से वंचित कर दिए गए शूद्र और स्त्रियाँ समाज व्यवस्था की सबसे आखरी पायदान पर खड़े हैं। इस कथन की विवेचना कीजिए।

8) आभिजात्य वर्ग-जाति की स्वार्थपरक प्रवृत्तियों की विवेचना कीजिए जो जाति उत्पीड़न, बहि-कार तथा हिसांत्मक कार्रवाइयों में विश्वास करती है।

9) 'जनपथ कविता' की जनसामान्य के प्रति प्रतिबद्धता को दर्शाते हुए सत्ता केन्द्रों की आलोचना के कारणों पर विस्तार से टिप्पणी लिखिए।

10) सामाजिक न्याय व्यवस्था की पक्षधर कविता 'अभिला-ा' ईश्वर निर्मित चातुर्वर्ण्य व्यवस्था की विद्रूपताओं को किस प्रकार कटघरे में लाकर प्रश्नांकित करती है? स्प-ट कीजिए।

11) आभिजात्य कविता और दलित कविता का आशय स्प-ट करें। क्या दलित कविता भारत की बहुसंख्यक आ बादी की स्वाभाविक चेतना का वहन करती है?

12) 'आज का रैदास कविता वर्ण आधिपत्य को चुनौती देती है' इस कथन के आलोक में कविता पर विचार कीजिए।

13) 'द्रोणाचार्य सुनें : उनकी परंपराएँ सुनें' कविता परंपरा की पुनर्व्याख्या कर भावी समाज का सपना पेश करती है; कैसे?

अभ्यास

'घृणा तुम्हें मार सकती है' और 'सच यही है' कविताएं भारतीय समाज-व्यवस्था के असंवेदनशील और विखण्डनवादी तत्वों को नकारते हुए समतादर्शी समाज की परिकल्पना करती हैं। दोनों कविताओं के संदर्भ में लगभग 250 से 300 शब्दों में निबंध लिखिए।

सभ्य समाज की पहचान के आधारभूत मूल्यों को रेखांकित करते हुए क्या भारतीय जाति-व्यवस्था ऐसे समाज की छवि को तिरोहित करती है? दोनों कविताओं संदर्भ में लगभग 250 से 300 शब्दों में निबंध लिखिए।

भारतीय संविधान आभिजात्य शासक वर्ग के सत्ता में उनके प्रभुत्व के हाशिए के वर्गों को समता, स्वतंत्रता और न्यायपूर्ण जनतंत्र की व्यवस्था स्थापित नहीं कर सका। 'जनपथ' और 'अभिला-ा' के विशे-ा संदर्भ के इस पर 250 से 300 शब्दों में निबंध लिखिए।

"दलित कविता वर्णवादी आभिजात्य और दमन से असहमत हो, एक स्वस्थ, जनतांत्रिक व न्यायशील समाज का सपना देखती है।", 'आज का रैदास' और 'द्रोणाचार्य सुनें : उनकी परंपराएँ सुनें', के विशे-ा संदर्भ में विचार करते हुए 250 से 300 शब्दों में निबंध लिखिए।